फॉयश्टवाँगर की दृष्टि में मृच्छकटिकम् : एक आलोचनात्मक अध्ययन

*डॉ. आनन्द दुबे

फॉयश्टवाँगर का जीवन अपनी पीढ़ी और समय के अनुरूप था। 7 जुलाई, 1884 ई. को म्यूनिख के एक धनी परिवार में उनका जन्म हुआ। अन्य यहूदियों की भाँति उनके जीवन को भी यहूदी धर्म ने बहुत प्रभावित किया और उनके जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का नियमन वकिया। उनके परिवार में परिश्रम, अनुशासन तथा सफलता का उतना ही महत्त्व था जितना यहूदी धर्म का।[1] 1903 ई. में उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा समाप्त कर अपने परिवार से पृथक रहना प्रारम्भ कर दिया और बाद में उन्होंने अपने परिवार से आर्थिक सहायता लेना भी बन्द कर दिया। वे पहले अध्यापन–कार्य से अपनी जीविका चलाते रहे तथा बाद में लेखन–कार्यों से।[2] म्यूनिख–विश्वविद्यालय में शोध–कार्य करते हुए उन्होंने हाइने की रचना "डेर राबी फॉन् वखाराख" (Der Rabbi von Bacharach) पर अपना शोध ग्रन्थ प्रकाशित किया। उनके इस शोध–ग्रन्थ ने शैक्षिक जगत् में धूम मचा दी। फॉयश्टवाँगर के कार्य से प्रभावित होकर अनेक प्राध्यापकों ने फॉयश्टवाँगर नसे अपना शोध–कार्य जारी रखने को कहा और उन्हें जर्मन–पत्रकारिता के उद्भव और विकास पर शोध करने के लिए उत्साहित किया। यह वह समय था जब उन्हें एक अन्य व्यवसाय, जिससे वे किसी न किसी रूप में जुड़े हुए थे, अपनी ओर खींच रहा था। शोध–कार्य करने के स्थान पर वे नाट्य–समीक्षक बन गए और बाद में उन्हांने स्वयं भी नाटक लिखे।[3] 1908 ई. में वे 'शाउब्यूहने' (Schauebuhne) के जो कि बाद में 'वेल्टब्यूहने' (Weltbuehne) के नाम से जाना गया, म्यूनिख स्थित समीक्षक बने।[4] 1910 ई. में उन्होंने अपना पहला उपन्यास 'डेर ट्योनेरने गोट' (Der Toenerne Gott) प्रकाशित किया। लियोन फॉयश्टवाँगर और थॉमस मान (Thomas Mann) दोनों ही धनी परिवारों से सम्बन्ध रखते थे और दोनों ही सम्भवतः संसार को यह बताना चाहते थे कि गैर–परम्परागत मार्गों पर चलकर भी जीवन में उच्च–कोटि की सफलता प्राप्त की जा सकती है।[5] थॉमस मान और लियोन फॉयश्टवाँगर की पीढ़ी ने संसार में आधारभूत परिवर्तन होते देखे। गाँव नगर में बदल गए और नगर महानगर में। म्यूनिख नगर की जनसंख्या 19वीं शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में तीन गुना बढ़ गई। अर्थव्यवस्था कृषि के स्थान पर उद्योगों एवं बाजारों परनिर्भर हो गई। समाज में होने वाले इन परिवर्तनों ने समाज को विभिन्न विरोधी वर्गों में विभक्त कर दिया। समाज में होने वाले इन परिवर्तनों का प्रभाव फॉयश्टवाँगर की कृतियों में स्पष्ट देखने को मिलता है। सामाजिक परिवर्तन को फॉयश्टवाँगर ने थॉमस मान की भाँति नकारात्मक नहीं, प्रत्युत सकारात्मक माना, यद्यपि वे पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थक नहीं थे और पूँजीवाद को अव्यवहारिक और अमानवीय मानते थे।[6] पीढ़ियों का संघर्ष जितना उस काल में तीव्र हुआ उतना कभी नहीं हुआ। पुरानी पीढ़ी अपने मूल्यों और मान्यताओं को बचाने के लिए नयी पीढ़ी से संघर्ष कर रही थी, जिसमें उसे सफलता प्राप्त नहीं हो रही थी।[7] जर्मनी में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के साथ राजनीतिक परिवर्तन भी हो रहे थे। 1871 ई. में अपने एकीकरण के बाद जर्मनी ने सभी क्षेत्रों में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। आर्थिक स्वार्थों और राजनीतिक महत्त्वकांक्षाओं ने यूरोप को दो महायुद्धों में फँसा दिया। स्वाभाविक रूप से इस घटनाक्रम का प्रभाव इस काल के सभी लेखकों पर पड़ा।

फॉयश्टवाँगर को कुछ समय के लिए सेना में नौकरी करनी पड़ी, क्योंकि जर्मनी में सैन्य–सेवा आवश्यक थी। स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से बाद में उन्हें सेना से निकाल दिया गया। युद्ध की विभीषिका ने उनकी आँखें खोल दी। फॉयश्टवाँगर ने युद्ध में मानव द्वारा मानव के 'औद्योगिक संहार' और युद्धकाल में दूसरे देशों और जातियों के प्रति घृणा को देखा। नरसंहार और घृणा ने उनकी आगे की रचनाओं की दिशा तय की। इसी काल में उन्होंने अपनी भारत–सम्बन्धी प्रथम कृतियों की रचना की। 1915 ई. में उन्होंने 'वसन्तसेना' ;टॆंदजॆंमदंद्ध नामक नाटक लिखा, जो कि 'शूद्रक' के महान् प्रकरण 'मृच्छकटिकम्' पर आधृत है। 1916 ई. में उन्होंने अपना ऐतिहासिक नाटक 'वॉरेन हेंसटिग्ज' ;तमद भ्मेंजपदहेद्ध प्रकाशित किया। इन दोनों ही नाटकों ने आशातीत सफलता प्राप्त की और फॉयश्टवाँगर को एक नाटककार और साहित्यकार के रूप में जर्मन–साहित्य जगत् में प्रतिष्ठित किया। 'वॉरेन हेस्टिगज' के पश्चात् उन्होंने 'क्योनिग उन्ड डी टेंत्सेरिन' ;ज्ञवमदपह नदक कपम ज्ंमद्रमतपदद्ध नामक नाटक प्रकाशित किया, जोकि महाकवि कालिदास कृत 'मालविकाग्निमित्रम्' पर आधृत था। 1924 ई. में उन्होंने बेर्तोल्त ब्रेख्त के साथ मिलकर 'वॉरेन हेस्टिग्ज' पर पुनः कार्य करना प्रारम्भ किया और एक नया नाटक 'कलकत्ता 4 मई' प्रकाशित किया। 1929 ई. में उन्होंने भारत–सम्बन्धी एक अन्य कृति 'मरियाने इन इण्डिएन' ;डंतपंददम पद प्दकपमदद्ध प्रकाशित की।

हमारे लिए यह जानना और समझना अत्यन्त आवश्यक है कि लेखक को 'वसन्तसेना' लिखने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई, मूल रचना के विषय में उन्हें जानकारी कहाँ से प्राप्त हुई तथा युद्ध की विभीषिका में झुलस रहे राष्ट्र में वे इस रचना को प्रकाशित कर किन उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते थे।

'मृच्छकटिकम्' पर आधृत फॉयश्टवाँगर की रचना 'वसन्तसेना' 1915 के प्रारम्भ में सामने आई। जुलाई, 1915 में 'शाऊब्यूहने' (Schaubuehne) ने और अक्टूबर, 1915 में डॉयचे ब्यूहने (Deutsche Buehne) ने इसके मंचन का निर्णय लिया और लगभग इसी समय अनेक अन्य रंगमंचों में भी इसके मंचन का निर्णय लिया, जिनमें दास डॉयचे थियाटर (das Deutsche Theater) प्रमुख है।

'वसन्तसेना' का पहला पुस्तक–संस्करण 1916 में प्रकाशित हुआ। रचना का शीर्षक था 'वसन्तसेना, एक रूपक तीन भागों, में भारतीय राजा शूद्रक पर आधृत' (Vasantasena, Ein Schauspiel in drei Akten, sieben Bildern. Nach dem Indischen Konig Sudraka) इस रचना को गिऑग म्युलर प्रकाशन, म्यूनिख (Georg Muller Verlag Munchen) ने प्रकाशित किया। रचना के रंगमंचीय संस्करण को ड्राई मास्केन (Drei Masken) प्रकाशन ने प्रकाशित किया। 'वसन्तसेना' के रंगमंचीय संस्करण में कुछ दृश्य पुस्तक–संस्करण की तुलना में अधिक थे। रचना के इसी रंगमंचीय संस्करण को बिना किसी विशेष परिवर्तन के 1954 में आउफबाऊ ब्यूहनेनफेरट्रीब बर्लिन (Aufbau Buehenevertrieb Berlin) ने प्रकाशित किया।

'वसन्तसेना' के पुस्तक–संस्करण को अपने प्रकाशन के इतिहास में अनेक परिवर्तनों का सामना करना पड़ा। इन परिवर्तनों के कारण रचना के एक–दूसरे से भिन्न अनेक संस्करण सामने आए। रचना का दूसरा पुस्तक–संस्करण 1924 में ड्राई मास्केन प्रकाशन, म्यूनिख ने प्रकाशित किया। 'वसन्तसेना' के इस पुस्तक–संस्करण में लेखक ने रंगमंचीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अनेक परिवर्तन किए।

*प्राध्यापक, जर्मन विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

लेखक ने मुख्य रूप से भाषा को सरल बनाने पर ध्यान दिया और अन्तिम दृश्य की अन्तिम 9 पंक्तियों को नाटक से निकाल दिया, जिनमें चारूदत्त अच्छे कार्यों के लिए बौद्ध भिक्षु (संवाहक) और चन्दनक को पुरस्कृत करता है। कुछ आलोचकों का मानना है कि ऐसा भूल के कारण भी हो सकता है।

'मृच्छकटिकम्' को किसने लिखा, इस विषय पर पर्याप्त लम्बे समय तक विवाद चलता रहा। संभवतः विवादों से बचने के लिए ही लेखक ने रचना के दूसरे संस्करण के शीर्षक से राजा शूद्रक का नाम हटा दिया। 1924 का यह संस्करण बाद में अनेक अन्य प्रकाशनों द्वारा प्रकाशित होने वाले संस्करणों का आधार बना। इन अनेक संस्करणों में 'स्टुके इन वेरसेन' (Stucke in Versen) में प्रकाशित संस्करण प्रमुख है, जिसे 'ग्राइफेन फेरलाग' (Greifen Verleg) ने 1954 में प्रकाशित किया। इस शोधपत्र में इसी संस्करण को मुख्य रूप से आधार बनाया गया है। 1969 में 'रोनाल्ड बिअर' (Ronald Bier) के निर्देशन में 'लियोन फॉयश्टवाँगर' – 'आल्टइंडिशे शाऊस्पीले' (Lion Feuchtwanger : Altindische Schaupiele) के नाम से एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें स्वाभाविक रूप से 'वसन्तसेना' को भी सम्मिलित किया गया। 'वसन्तसेना' के इस संस्करण में 1954 के संस्करण के साथ–साथ 'वसन्तसेना' के रंगमंचीय संस्करण का भी प्रयोग किया गया था। इस अन्तिम संस्करण के शीर्षक में, शोधों द्वारा स्थापित सत्य को ध्यान में रखते हुए, राजा शूद्रक के नाम को फिर से सम्मिलित किया गया।

फॉयश्टवाँगर ने 1915 ई. में अपनी रचना 'वसन्तसेना' का एक विस्तृत प्राक्कथन लिखा और कहा कि मृच्छकटिकम् की प्रस्तावना राजा शूद्रक को उसी प्रकार अपना लेखक बनाती है जिस प्रकार बाइबिल राजा सोलोमन को।[9] ऐसा प्रतीत होता है कि 1915 ई. में प्राक्कथन लिखे जाने के समय तक फॉयश्टवाँगर को राजा शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' के कर्त्ता होने पर सन्देह था। पश्चिम के लिए किसी राजा का लेखक होना आश्चर्य का विषय हो सकता है; किन्तु भारत में अनेक राजाओं के श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना की है।

नवीनतम शोधों के आधार पर भारतीय विद्वान् अनेक जर्मन विद्वानों के समान ही शूद्रक को 'मृच्छकटिकम्' का लेखक मानते है।

जर्मन विद्वानों ने अपनी खोजों के आधार पर 'मृच्छकटिकम्' का रचनाकाल तृतीय और चतुर्थ शताब्दी ई. निश्चित किया है। जर्मन विद्वान् इस काल को भारतीय लेखन और नाट्यकला का सर्वश्रेष्ठ काल मानते है।[10]

समीक्षक हॉस डाह्लके ने फॉयश्टवाँगर द्वारा रचित 'वसन्तसेना' की समीक्षा करते हुए कहा कि इसके पहले चार अंक भास द्वारा रचित 'चारूदत्त' के अधिक निकट है। 'मृच्छकटिकम्' परअपने विचार प्रकट करते हुए हॉस डाह्लके ने कहा कि यह नाटक प्रस्तावना तथा 10 अंकों से युक्त है तथा भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार यह एक 'प्रकरण' है। 'प्रकरण' के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए हॉस डाह्लके का कथन है कि 'प्रकरण' उस रूपक को कहा जाता है जिसमें राजाओं तथा देवी–देवताओं के कार्यकलापों के स्थान पर जन–सामान्य के जीवन का चित्रण किया जाता है। 'प्रकरण' में नायक एक ब्राह्मण अथवा निर्धन व्यापारी होता है तथा उसकी नायिका सामान्य परिवार की कोई सामान्य कन्या अथवा नगरवधू होती है। इसमें एक विदूषक होता है, तथा समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले कई अन्य पात्र होते हैं जो समाज और जीवन की समस्याओं को प्रकट करते हैं और उन विषयों पर अपने विचार व्यक्त करते हैं।[11]

फॉयश्टवावँगर ने 'मृच्छकटिकम्' का रूपान्तरण करने से पहले संस्कृत–नाटकों का, भारतीय नाट्यकला का और संस्कृत–भाषा के अन्य ग्रंथों का गहन अध्ययन किया था। विभिन्न अनुवादों का अध्यन किए बिना 'वसन्तसेना' की रचना करना असंभव था। तथ्य यह है कि लेखक ने विल्सन के अनुवादों 'सिलेक्ट स्पेसीमेंन ऑफ दि थियेटर ऑफ दि हिन्दूज, ट्रान्सलेटेड फ्रॉम दि ओरिजिनिल संस्कृत, कलकत्ता, 1827' (Select Specimen of the Theatre of the Hindus, Translated from the Original Sanskrit, Calcutta, 1827) का अध्ययन किया था। संभवतः उन्होंने बाद में ऑस्कर लुडविग बेर्नहार्ड वोल्फ (Oskar Ludwig Bernhard Wolff) द्वारा प्रकाशित अनुवाद 'दास थिआटर डेर हिन्दूज' (Das Theater der Hindus, 1823-29) का भी अध्ययन किया था। यह पुस्तक अंग्रेजी–भाषा से जर्मन–भाषा में अनुदित की गई थी। लेखक ने ऐमिल पोह्ल (Email Pohl) के रूपान्तरण 'वसन्तसेनाः ड्रामा इन फयूनफ आंक्टेन मिट फ्राईअर बेनुट्त्सुन्ग डेर डिश्टुंग डेस आल्टइंडिशेन क्योनिग्स शूद्रका, स्टुटगार्ट 1893' (Vasantasena : Drama in fuenf Akten mit freier Benutzung der Dichtung desaa altindichen Koenigs Sudraka, Stuttgart, 1893) का भी प्रयोग अपने रूपान्तरण के लिए किया, यद्यपि यह सर्वविदित है कि ऐमिल पोह्ल का रूपान्तरण मूल संस्कृत–रचना से काफी भिन्न है।

19 वीं शताब्दी ई. में अनेक अन्य रूपान्तरण और अनुवाद प्रकाशित हुए; किन्तु उनमें से लेखक ने केवल हेरमान केमिलो केल्मर (Herman Camillo Kellner) की 1893 ई. में प्रकाशित पुस्तक का ही आश्रय अपने रूपान्तरण के लिए लिया। केल्नर की पुस्तक काफी सटभ्क थी, क्योंकि अनुवादक ने संस्कृत–भाषा के समीप आने का अपनी ओर से पूरा–पूरा प्रयास किया था। केल्नरकी पुस्तक ने फॉयश्टवाँगर को 'मृच्छकटिकम्' का रूपान्तरण करने में भरपूर सहायता प्रदान की। ऐसा माना जाता है कि लेखक ने लुडिबग फ्रित्से की ;स्नकूपह थ्तपजमद्ध 1879 ई. में प्रकाशित पुस्तक की सहायता भी अपने रूपान्तरण के लिए प्राप्त की।

संस्कृत–नाटकों में विभिन्न पात्र अपनी शिक्षा और सामाजिक स्थिति के अनुसार विभिन्न भाषाएँ बोलते है। 'मृच्छकटिकम्' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए हॉस डाह्लके कहते हैं कि रूपक के सभी शिक्षित पात्र संस्कृत–भाषा बोलते हैं और अशिक्षित तथा समाज के निम्न वर्ग से आने वाले पात्र बोलचाल की उस समय की आम भाषा प्राकृत बोलते हैं।[12] फॉयश्टवाँगर की रचना पर अपने विचार व्यक्त करते हुए हॉस डाह्लके कहते है कि 'मृच्छकटिकम्' में चारूदत्त, शर्विलक, आर्यक और न्यायाधीश संस्कृत–भाषा बोलते हैं तथा दूसरे पात्र प्राकृत–भाषा बोलते है। आर्यक का संस्कृत बोलना किसी सीमा तक बाद में उसके सत्ता सम्भालने को न्यायोचित ठहराता प्रतीत होता है। आर्यक का मित्र शर्विलक ब्राह्मण है और शिक्षित होने के कारण संस्कृत–भाषा बोलता है, यद्यपि वह एक चोर है। शर्विलक का शास्त्रीय ज्ञान उसके द्वारा चारूदत्त के घर पर चोरी किए जाते समय प्रकट होता है और हास्य की सृष्टि उत्पन्न करता है। संस्थापक प्राकृत–भाषा बोलता है और वइ इस भाषा को भी ठीक से नहीं बोल पाता। वह शिक्षित होने का आभास देना चाहता है; किन्तु उसकी भाषा उसे अशिक्षित और अपराधी प्रवृत्ति का घोषित करती है। हॉस डाह्लके स्वीकार करते हैं कि फॉयश्टवाँगर अपने अथक् प्रयासों के बाद भी रूपान्तरण में भाषा की इस विविधता की नकल नहीं कर सके; किन्तु भाषा की विविधता ने फॉयश्टवाँगर को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे गद्य एवं पद्य दोनों का अपनी रचना में प्रयोग करें।[13]

फॉयश्टवाँगर की रचना में चारूदत्त और वसन्तसेना एक–दूसरे से तथा अन्य पात्रों से पद्य में बात करते हैं। जो पात्र पद्य में बात नहीं कर सकते उनसे वे गद्य में बात करते हैं। रोहसेन, आर्यक, न्यायाधीश और वसन्तसेना की माता पद्य में बात करते हैं, विदूषक तथा संस्थापक कभी गद्य में तो कभी पद्य में बात करते हैं। शेष पात्र यथा चारूदत्त का सेवक, वसन्तसेना का महावत, सन्तरी और चाण्डाल केवल गद्य में बात

करते हैं। हाँस डाह्लके के अनुसार गद्य और पद्य का यह प्रयोग केवल सामाजिक भिन्नताओं को प्रकट करने के लिए नहीं किया गया है अपितु वसन्तसेना और चारूदत्त की प्रेमकथा को और उसके साथ जुड़े राजनीतिक घटनाक्रम को उभारने के लिए किया गया है। गद्य और पद्य का यह प्रयोग मूल कथा को अन्य दृश्यों से पृथक् करने के लिए भी किया गया है। जहाँ जनसामान्य से जुड़ी बातें दर्शायी गई हैं।[14]

अपने प्राक्कथन में फॉयश्टवाँगर ने 'मृच्छकटिकम्' की भाषा–शैली की प्रशंसा करते हुए मत व्यक्त किया कि शूद्रक भाषा का अपने पात्रों के मनोविज्ञान को प्रकट करने वाले साधन के रूप में प्रयोग करते हैं अथात् भाषा में पात्रों का समूचा मनोविज्ञान पाठक के समक्ष स्पष्ट हो जाता है।[16]

संस्कृत–नाटकों की एक बड़ी विशेषता यह रही है कि इसमें मंचसज्जा नहीं की जाती है। फॉयश्टवाँगर ने संस्कृत–नाटकों की इस विशेषता की भूरि–भूरि प्रशंसा की और कहा कि मंचसज्जा के अभाव ने लेखक को व्यापक चित्रण की सुविधा ही प्रदान नहीं की, प्रत्युत उसे ऐसा करने के लिए विवश भी किया। प्रस्तुतीकरण में काव्यात्मक उपमाएँ और तुलनाएँ भरी होती है। शब्द राशि अपनी श्रेष्ठता पर होती है। प्रस्तुतीकरण में धर्म से जुड़ी कथाओं और महती घटनाओं का वर्णन भी किया जाता है।[15] हाँस डाह्लके के मतानुसार फॉयश्टवाँगर संस्कृत–नाटकों की इस महिमा को बनाकर न रख सके, क्योंकि उन्हें अपने रूपान्तरण को आधुनिक रंगमंच की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया था। अपने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए फॉटश्टवाँगर को अपरिहार्य रूप से कुछ परिवर्तन करने पड़े। उन्होंने नाटकीय घटनाक्रम में आधारभूत परिवर्तन किए और साथ–साथ रूपक की गेयात्मकता को भी कम किया। उन्होंने उन अभिव्यक्तियों और संकेतों को जिन्हें केवल भारतीय दर्शक ही समझ सकते थे अपने रूपान्तरण में सम्मिलित नहीं किया। फॉयश्टवाँगर ने रूपक की प्रस्तावना को काफी छोटा किया और मूल रूपक के विपरीत चारूदत्त की पत्नी को रूपान्तरण में कोई स्थान नहीं दिया, जो जीवन की हर स्थिति में अपने पति चारूदत्त का साथ देने के लिए त्तपर रहती है और वसन्तसेना के साथ अपने पति के प्रेम का विरोध ा नहीं करती।

वे जर्मन–जनता को विश्व–साहित्य की एक अनमोल कृति से परिचित कराना चाहते थे और अन्धराष्ट्रवादियों को यह बताना चाहते थे कि दूसरे राष्ट्रों और उनकी संस्कृतियों ने भी अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। विदेशी राष्ट्रों की सांस्कृतिक उपलब्धियों के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए वे जर्मनी में व्याप्त अन्धराष्ट्रवादी विचारधारा पर विजय प्राप्त करना चाहते थे।

'मृच्छकटिकम्' का रूपान्तरण फॉयश्टवाँगर के लिए एक आनन्ददायक अनुभव था। अपनी इस रचना से उन्हें बहुत प्रेम था, जो उन्हें अपने पूरे जीवन रहा। 'मृच्छकटिकम्' की सुव्यवस्थित सुन्दरता, उसकी एक रचना के रूप में पूर्णता, उसकी मनोहरता में छायी हुई उत्साहहीनता, उसकी साधुता और उसकाविवेक फॉयश्टवाँगर के मन को भा गए। उन्होंने बाद में स्वीकार किया कि ऐसा कोई यूरोपीय नाटक नहीं है जो जीवन को इतने रंगबिरंगेपन के साथ प्रस्तुत करता है जितना कि यह भारतीय रूपक।[17]

नियति और संयोग किस प्रकार मानव–जीवन को प्रभावित करते हैं, यह 'मृच्छकटिकम्' से स्पष्ट होता है। फॉयश्टवाँगर को नियति और संयोग का यह खेल बहुत भाया और इसलिए उन्होंने अपनी रचना के प्राक्कथन में वसन्तसेना के वे पद्य उद्धृत किए जो नियति और संयोग के इस विचित्र खेल को चित्रित करते हैं और मानवीय योजनाओं की निरर्थकता को प्रकट करते हैं।[18] नियति कभी–कभी संयोगों के द्वारा प्रकट होती है। नियति के लिए संसार बच्चों के खेलने का खिलौना मात्र है; किन्तु निराश होने का फिर भी कोई कारण नहीं है। संयोग चारूदत्त और वसन्तसेना को अपार दुःखों और कष्टों में फंसा देता है। बुराई यहाँ मूर्खता और अविवेकशीलता है जो संस्थापक के रूप में प्रकट होती है और जो कुछ समय के लिए विजयी भी होती है; किन्तु केवल कुछ ही समय के लिए। अन्त में सत्य और प्रेम की विजय होती है।

1914–1916 ई. के बीच जर्मनी युद्ध में उलझा हुआ था। वह जय–पराजय के बीच झूल रहा था। सम्पूर्ण राष्ट्र के चिन्तन पर अन्य युद्धरत राष्ट्रों की भाँति राष्ट्रवादी विचारधारा छायी हुई थी। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर भी अनेक प्रतिबन्ध ा लगे हुए थे। संचार–माध्यम शत्रुराष्ट्रों के प्रति विष–वमन कर रहे थे। ऐसे कठिन समय में फॉयश्टवाँगर ने 'वसन्तसेना' का प्रकाशन किया। रचना का सन्देश और वे विभिन्न कारक जिन्होंने लेखक को 'मृच्छकटिकम्' का रूपान्तरण करने के लिए प्रेरित किया प्रमाणित करते हैं कि 'वसन्तसेना' एक युद्ध–विरोधी रचना थी।

'वसन्तसेना' ने सफलता के अनेक कीर्तिमान स्थापित किए। इस रचना ने अपने रचनाकार को एक गम्भीर लेखक के रूप में स्थापित किया और उसे सर्वत्र यश दिलाया। 4 मार्च, 1916 ई. को कार्ल हागेमान (Karl Hagemann) के निर्देशन में इसे पहली बार मानहईम (Mammheim) में मंचित किया गया। प्रथम प्रदर्शन के बाद से 1917 ई. तक इसे 10 बार यहाँ मंचित किया गया। युद्ध–काल में 'वसन्तसेना' 11 भिन्न मंचों द्वारा मंचित की जा रही थी। वियना (Viena) में इसका प्रथम प्रदर्शन 21 सितम्बर, 1917 ई. को हुआ और उसके बाद 16 और प्रदर्शन हुए। ऑटो फलेकनबर्ग (Otto Fleckenberg) के निर्देशन में म्यूनिख में इसका प्रथम प्रदर्शन 8 फरवरी, 1918 ई. को हुआ, जिसके बाद इसे 37 बार मंचित किया गया। प्रथम विश्वयृद्ध के पश्चात् 'वसन्तसेना' के प्रति लोगों का उत्साह और बढ़ा। अनेक प्रतिष्ठित रंगमंचों ने इसके प्रदर्शन की घोषणा की। शाउस्पीलाहउस ड्रेसडेन (Schauspielhaus Dresaaden) में इसका प्रथम प्रदर्शन 3 मार्च, 1922 ई. को हुआ। शाउस्पीलाहाउस फ्रांकफुर्ट (Schauspielhaus Frankfurt) में इसका प्रथम प्रदर्शन 9 जून, 1924 ई. को हुआ यहाँ इसके 20 से अधिक मंचन हुए। फोलक्सब्यूहने बर्लिन (Volksbuhne Berlin) में इसका प्रथम प्रदर्शन 25 अप्रैल, 1924 ई. को हुआ। यहाँ इसे 40 से अधिक बार मंचित किया गया। स्टुटगार्ट (Stuttgart) में इसका प्रथम प्रदर्शन 23 फरवरी, 1925 ई. को हुआ। यहाँ इसे 10 बार मंचित किया गया। बुर्ग थिआटर वियना (Burgtheater Wien) में इसका प्रथम प्रदर्शन 15 अक्टूबर, 1926 को हुआ। यहाँ इसे 20 बार प्रदर्शित किया गया।

'वसन्तसेना' की सफलता से प्रभावित होकर मार्च, 1925 ई. में फॉयश्टवाँगर ने लिखा कि ''..... सैंकड़ों मंचनों ने इस भारतीय रचना की जीवन्ता को सिद्ध कर दिया है।[19]

प्रथम प्रदर्शन के बाद के 8 वर्षों में 'वसन्तसेना' को 24 रंगमंचों ने 200 से अधिक बार मंचित किया। इन सफल प्रदर्शनों से 'वसन्तसेना' की सफलता की कहानी समाप्त नहीं हो जाती। मार्च 1925 ई. से अप्रैल, 1931 ई. तक 'वसन्तसेना' को 31 रंगमंचों ने 200 बार मंचित किया। बर्लिन रेडियो ने 1927 में पहली बार रेडियो–नाटकों के प्रसारण का निर्णय लिया। 1 अप्रैल, 1927 ई. को अल्फ्रेड ब्राउन (Alfred Braun) के निर्देशन में इसे रेडियों पर प्रसारित किया गया। रेडियों पर प्रसारित होने वाले पहले नाटकों में 'वसन्तसेना' भी सम्मिलित था। पश्चिम जर्मन रेडियों ने उसे एक बार फिर 11 नवम्बर, 1931 ई. को प्रसारित किया।

मार्च, 1933 में हिटलर के सत्ता में आ जाने के बाद लेखक को जर्मन नागरिकता से वंचित कर दिया गया और उन्हें जर्मन छोड़कर जाना पड़ा। यहूदियों पर अनेक अत्याचार किए गए और यहूदी लेखकों की पुस्तकों को सार्वजनिक रूप से

जलाया गया। इन्हीं कारणों से 1933 ई. के बाद 'वसन्तसेना' का मंचन द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति तक जर्मनी में कहीं नहीं हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बार 1960 ई. में श्योनेमान (Schonemann) के निर्देशन में मंचित किया गया। इसका प्रथम प्रदर्शन 10 अक्टूबर, 1960 ई. को बर्लिन में हुआ। 'वसन्तसेना' को अपार–सफलता प्राप्त हुई। इसे 1963 ई. तक लगभग 80 बार मंचित किया गया।

'वसन्तसेना' के रूपान्तरण और उसकी रंगमंचीय सफलता के विषय में साहित्य और कला समीक्षकों ने जो विचार व्यक्त किए वे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। समीक्षकों के उन उद्देश्यों के विषय में कुछ नहीं लिखा जिनकी पूर्ति के लिए फॉयश्टवाँगर ने 'वसन्तसेना' की रचना की। समीक्षकों ने निर्देशन और मंचन के विषय में विस्तार से लिखा; किन्तु दो संस्कृतियों का सम्बन्ध स्थापित करने वाली कड़ी के रूप में इस रचना के महत्त्व को वे नहीं जान पाए। समीक्षक यह भी ठीक से नहीं समझ सके कि इस रचना को अधिक लोकप्रियता क्यों प्राप्त हुई।

जुलाई, 1915 ई. में फॉयश्टवाँगर ने 'वसन्तसेना' के प्राक्कथन में 'मृच्छकटिकम्' के विषय में अपने विचार व्यक्त किए। इस प्राक्कथन का अध्ययन करने पर हमें फॉयश्टवाँगर की मूल रचना के बारे में समझ की जानकारी प्राप्त होती है तथा साथ ही संस्कृत नाटकों के विषय में उनके विचार भी जानने को मिलते है। उन्होंने जर्मन और यूरोपीय पाठकों के लिए लेख लिखा था, जिनमें से अधिकांश को 'मृच्छकटिकम्' के विषय में सही जानकारी नहीं थी; अतः उन्होंने अपने प्राक्कथन का प्रारम्भ नाटक के परिचय से किया। वे लिखते हैं, "इस नाटक का मूल नाम 'मृच्छकटिकम्' है जिसका अर्थ मिट्टी की गाड़ी होता है। यह शीर्षक नाटक के उस दृश्यसे लिया गया है जिसमें रोहसेन की खेलने की गाड़ी को (हमारे रूपान्तरण के दूसरे भाग का प्रारम्भ) वसन्तसेना अपने आभूषणों से भर देती है ताकि वह गाड़ी सोने की बन जाए। ये ही आभूषण आगे चलकर चारूदत्त के विरूद्ध प्रमाण बन जाते हैं। यह घटना नाटक में मुख्य दिशा–बिन्दु है। शीर्षक का प्रतीकात्मक महत्त्व भी बिना किसी कठिनाई के समझा जा सकता है विशेषतया जब हम नाटक की अन्तिम पंक्तियों की ओर ध्यान देते हैं – हम रेहट से जुड़े डिब्बों के समान है। नियति एक को खाली करती है और दूसरे को भरती है, ऊँचा उठाती है और गिराती है। यह विरोधभासी वस्तुओं को एक–दूसरे से जोड़ती है एक खेलते बालक की भाँति जिसका खिलौना यह संसार है।"[20]

'मृच्छकटिकम्' के लेखक और उसके रचनाकाल के विषय में पर्याप्त समय तक भ्रम की स्थिति बनी रही। लेखक लिखते है कि, "प्रस्तावना में राजा शुद्रक को लेखक बताया गया है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार बाइबिल में राजा सोलोमन को लेखक बताया गया है। लेखक का वास्तविक नाम हमें ज्ञात नहीं है।ऐसा माना जाता है कि नाटक का मूल रूप भास ने लिखा होगा; किन्तु निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। यह रचना कब लिखी गई, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि नाटक का वह रूप, जो आज हमारे सामने है हमारी कालगणना के अनुसार 450 और 650 ई. के मध्य लिखा गया।"[21]

'मृच्छकटिकम्' के पहले यूरोपीय अनुवादक विल्सन (Wilson) ने शूद्रक को भारतीय शेक्सपीयर कहा था। फॉयश्टवाँगर ने भी इस विषय पर विचार किया और कहा कि "यह नाटक महान् यूनानी त्रासदियों के लगभग 1000 वर्ष बाद लिखा गया और शेक्सपीयर से लगभग 1000 वर्ष पहले। शेक्सपीयर से हजार वर्ष पुराना; किन्तु किसी भी स्थिति में उससे कम जीवन्त नहीं।"[22] वे स्वयं अपनी ही कही बात का स्पष्टीकरण देते हुए आगे लिखते है कि 'वसन्तसेना' सौम्यता और ज्ञान से परिपूर्ण परित्याग को मनोहर नटखटता से जोड़ती है। लेखक का ब्राह्मणवादी–बुद्धवादी दर्शन जो संसार को केवल छल और माया मानता है रचना को एक आधारभूत भाव प्रदान करता है, इसकी भावुकता की तीव्रता को कम करता है और इसकी नटखटता को विचारणीय विषाद से सीमित करता है। केवल एक पूर्ण और सुसंगत विश्वदृष्टि जो ह्रदय और मस्तिष्क को, विचारों को, दृष्टि को और अनुभूति को पूर्णता के साथ एक–दूसरे से मिलाती है इस प्रकार की पूर्णता को प्राप्त रचना की रचना की जा सकती है। यह रचना सभी सांसारिक विसंगतियों को आध्यात्मिक सुसंगतियों से मिला देती है। नाटकीय क्रिया यहाँ अपने चरमोत्कर्ष पर है। यह रूपक सभी पक्षों को छूता है, यहाँ तक कि यह लेखक की ब्राह्मणवादी–बुद्धवादी सोच को भी नहीं छोड़ता, क्योंकि लेखक फिर चाहे वह अपनी विचारधारा की सत्यता के प्रति कितना ही समर्पित क्यों न हो, व्यवस्था के सतहीपन का व्यंग्य उड़ाने से नहीं चूकता। यह कोई संयोग नहीं है कि उनके लिए प्रेम और वर्षा की ऋतुएं समान होती है और वे अस्तिव से जुड़ी सभी घटनाओं को प्रकृति जन्य तुलनाओं से स्पष्ट करते हैं। 'वसन्तसेना' की सुन्दरता हमारे लिए कल्पनातीत है, इसे हम शब्दों में नहीं बाँध सकते। यह उसी प्रकार कल्पनातीत है जिस प्रकार सागर और उसकी सम्पदा, वन और उनकी सम्पदा।"[23]

'मृच्छकटिकम्' की प्रशंसा करते हुए फॉयश्टवाँगर लिखते हैं कि, "ऐसा कोई यूरोपीय नाटक नहीं है जो जीवन को इतने रंगबिरंगेपन से चित्रित करें जितना कि यह भारतीय रूपक। ऐसा कोई नाटक नहीं है जो निष्कपट सुख और संसार के अर्थहीन रंगबिरंगेपन की प्रशंसा करता है, उस पर हँसता है, विलाप करता है और उसे प्रतिबिम्बित करता है। अनेक प्रकार से प्रकट करता है कि किस प्रकार अर्थ अनर्थ में, भाग्य दुर्भाग्य में, हानि वरदान में परिवर्तित हो जाते हैं। मानवीय योजनाएँ कितनी अर्थहीन है और आनन्दपूर्ण क्षण कितने अनुदात्त हो सकते है। प्रयोजन कुछ नहीं – सब कुछ संयोग है।[24]

अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए फॉयश्टवाँगर अपने रूपान्तरण से निम्न पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं :–

नियति, तुम मानवों से ठिठोली करती हो,
जिस प्रकार वायु बूँदों से कमल के पत्तों पर।

'मृच्छकटिकम्' के कलापक्ष की समीक्षा करते हुए वे लिखते है, कि कथा–लेखन की एक परिपूर्ण कला 'संयोग' पर छाई रहती है। इस रूपक में जिसमें सतही रूप में संयोग छाया रहता है, कला की दृष्टि से कुछ भी संयोगवश नहीं हुआ है। महाकाव्यों के भण्डार ले लेखक को आधारभूत त्तव प्रदान किए है। जिन्हें एक–दूसरे से कलात्मकता से जोड़ने की कला उसे रंगमंच की अतिविकसित परम्परा और तकनीक की सहजता ने प्रदान की है। भारतीयों का रंगमंचीय कौशल उन्हें वे सभ्झी सुविधाएँ प्रदान करता है जो हमारे युग में फिल्मों के निर्देशक के पास होती है, क्योंकि संस्कृत–नाटकों में मंचसज्जा नहीं की जाती। इससे लेखक को यह सुविधा प्राप्त होती है कि वह एक वाक्य को घर में तथा दूसरे को सड़क पर प्रदर्शित कर सकता है तथा समय को भी आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकता है अर्थात् घटनाक्रम को किसी अन्य स्थान, पर, किसी अन्य समय में होता हुआ दिखा सकता है। 'मृच्छकटिकम्' के लेखक के फॉयश्टवाँगर के मतानुसार उन सभी स्वतन्त्रताओं का युक्तिसंगत और सीमित प्रयोग इस प्रकार किया है कि रचना का नाटकीय प्रभाव कहीं भी कम नहीं हुआ है। विशेष रूप से रूपक के दूसरे भाग में बड़ी योग्यता से नाटकीय प्रभाव को उभारा गया है।[25]

फॉयश्टवाँगर ने लिखा कि चरित्र–चित्रण 'मृच्छकटिकम्' के लेखक की वह विशेषता है जो उसे विशेष रूप से शेक्सपीयर से जोड़ती है। उन्होंने लिखा कि चरित्र–चित्रण के क्षेत्र में शेक्सपीयर के समान योग्यता रखने वाला लेखक ढूँढ़ने के लिए इतिहास में 1000 वर्ष पीछे जाना पड़ता है।

रूपक के नायक चारूदत्त की चर्चा करते हुए फॉयश्टवाँगर लिखते है कि रूपक का नायक चारूदत्त जो एक निर्धन व्यापारी है और स्वभाव से उदार एवं कृपालु है – एथेन्स के टिमोन्स और अन्तोनिया के समान है। चारूदत्त राजाओं के समान उदार है, विषादग्रस्त और भाग्यवादी है। वह भाग्य को परिवर्तित होते हुए देखता है और अन्याय को राजसी तिरस्कार से परिपूर्ण विषाद के साथ स्वीकारता है।

फॉयश्टवाँगर ने चारूदत्त के मित्र मेंत्रेय के विषय में भी विचार व्यक्त किए है। वे कहते है कि मेंत्रेय एक ब्राह्मण है; किन्तु निर्धन और वह सदैव जीवन के अच्छे समय का स्मरण करता रहता है। फॉयश्टवाँगर के अनुसार मेंत्रेय में व्यावहारिक जीवन के लिए आवश्यक चतुराई है, वह एक भला व्यक्ति है और एक सच्चा मित्र है।

शर्विलक के विषय में विचार व्यक्त करते हुए फॉयश्टवाँगर लिखते हैं कि शर्विलक एक गिरा हुआ ब्राह्मण है, जो व्यक्तिगत स्वार्थ और आदर्शवाद का विचित्र मिश्रण है। वह राजा का शत्रु है, कुछ अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता के कारण और कुछ अपने स्वयं के व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण। फॉयश्टवाँगर के अनुसार शर्विलक एक ऐसा विचित्र पात्र है जो दर्शनशास्त्र के अपने गुढ़ ज्ञान का प्रयोग चोरी करने के लिए और उसे न्यायोचित ठहराने के लिए करता है।[26]

लगभग सभी पात्रों के विषय में अपने विचार व्यक्त करने के पश्चात् फॉयश्टवाँगर ने रूपक की नायिका वस्नतसेना के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए उसे विश्व–साहित्य की सर्वोत्तम नायिका निरूपित किया है। उन्होंने अपने लेख में वसन्तसेना की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। ऐसा प्रतीत होता है कि वसन्तसेना के व्यक्तिव से प्रभावित होकर ही उन्होनें अपने रूपान्तरण का नाम 'वसन्तसेना' रखना उचित समझा। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि फॉयश्टवाँगर ने मूल रचना 'मृच्छकटिकम्' के लिए अनेक बार 'वसन्तसेना' शब्द का प्रयोग किया है। हम जानते हैं कि महान् जर्मन कवि गोथे ने फोरस्टर द्वारा अनूदित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' को पढ़ने के पश्चात् शकुन्तला का अभिनन्दन करते हुए एक पद्य लिखा था। फॉयश्टवाँगर कल्पना करते है कि गोथे क्या करते अगर संयोग से उन्हें 'मृच्छकटिकम्' पढ़ने को मिला होता और उनका परिचय वसन्तसेना से हुआ होता।[27]

फॉयश्टवाँगर लिखते है कि वसन्तसेना एक वेश्या है; किन्तु वह अपनी इच्छा से वेश्या नहीं बनी है। वह अपने जन्म और अपनी जाति के कारण वेश्या बनी है। वह गणिका है, सभी कलाओं में पारंगत है, एक विकसित संस्कृति की सभी विशेषताओं से परिचित है, सार्वजनिक रूप से नृत्य करना उसका कार्य है, वह नगर की सर्वाधिक चाही जाने वाली महिला है; किन्तु उसके समाज द्वारा अच्छी दृष्टि से न देखे जाने वाले कार्य भी उसके व्यक्तिव की विलक्षणता को कम नहीं करते।[28]

वसन्तसेना के विषय में अपने उद्गार व्यक्त करने के पश्चात् फॉयश्टवाँगर ने रूपक के सर्वाधिक रोचक पात्र संस्थानक के विषय में अपने विचार व्यक्त किए। फॉयश्टवाँगर ने संस्थानक को रूपक का सबसे निर्भीक पात्र माना है। वे उसे वसन्तसेना के उद्यान का एक वानर मानते है। फॉयश्टवाँगर संस्थानक के हानिकारक और दुर्भावना से परिपूर्ण कार्यों और उसके विलक्षण किन्तु हास्यास्पद कार्यों के बीच एक सन्तुलन देखते है। वे कहते है कि संस्थानक राजा की एक रखैल का भाई है और उे प्रिय है। वह अहंकार है, भाग्य और व्यवस्था में प्राप्त स्थान ने उसके मन–मस्तिष्क को दिग्भ्रान्त कर दिया है। वसन्तसेना उसके प्रणय–निवेदन को ठुकरा देती है और इसे वह अपने अधिकारों पर आघात मानता है। एक ऐसा अपमान मानता है जिसका प्रतिशोध वह केवल वसन्तसेना के रक्त से ही ले सकता है। हत्या की योजना को क्रियान्वित करते समय वह उन्मादी मूर्खता का प्रदर्शन करता है। फॉयश्टवाँगर कहते है कि संस्थानक में क्लोटन का अहंकारोन्माद, शायलॉक की प्रतिशोध की भावना तथा कालिबान की दुर्भावना का मिश्रण देखने को मिलता है। राक्षसी, विकृत, दुर्भावनापूर्ण संस्कार, एक बाँकपन लिए हुए एक साथ अविभाज्य, आनन्दपूर्ण और हानिकारक रूप में हमें संस्थानक में देखने को मिलते हैं। फॉयश्टवाँगर उसे दूसरा 'नीरो' मानते हैं, जो शासक होने के साथ–साथ कलाकार भी होना चाहता है। संस्थानक शब्दों का उल्टा–सीधा प्रयोग करता है और वह अपने–आपको कवि मानता है। संस्थानक में सभी विकृत इच्छाएँ पनपती हैं।[32] फॉयश्टवाँगर ने यहाँ शूद्रक की विशेष रूप से प्रशंसा करते हुए लिखा है कि संस्थानक का चरित्र लेखक के ज्ञान को प्रदर्शित करता है, क्योंकि लेखक बुराई को मूर्खता और अज्ञान से अधिक कुछ नहीं मानता। शूद्रक अच्छे संस्कारों को प्रणाम करते है तथा बुरे संस्कारों पर हँसते हैं। फॉयश्टवाँगर संस्थानक जैसे पात्र को और उन अवगुणों को जिनका प्रतिनिधित्व वह करता है, रूपक के लिए आवश्यक मानते हैं, क्योंकि वह सांसारिक जीवन में व्याप्त बुराई को प्रकट करता है। उन्होंने अपने लेख में बताया कि शूद्रक रूपक में त्रासदी को पीछे कर देते हैं तथा हास परिहास को आगे।

फॉयश्टवाँगर ने प्रकृति–चित्रण के क्षेत्र में शूद्रक की योग्यता को स्वीकार करते हुए का कि प्रकृति के भिन्न रूपों, पुष्पकरण्डक उद्यान और वसन्तसेना के प्रसाद का शूद्रक ने सुन्दरतम वर्णन किया है। भाग्य, नियति, निर्धनता आदि अन्य विषयों पर भी इस रूपक में चतुराई और सुन्दरता से विचार व्यक्त किए गए हैं।[30] फॉयश्टवाँगर ने माना कि भारतीयों की भाषा में एक मिठास है और वे कठोर से कठोर बात को भी मनोहरता से अभिव्यक्त करने की क्षमता रखते हैं।

अपने रूपान्तरण की सफलता के विषय में मौन रहना फॉयश्टवाँगर को उपयुक्त लगा और उन्होंने अपने लेख के अंत में पाठकों को 'मृच्छकटिकम्' का अनुवपाद पढ़ने का परामर्श दिया ताकि वे स्वयं निर्णय ले सकें कि रूपान्तरण कहाँ तक सफल हुआ है।

सन्दर्भ :–

1- Kopke. Wulf, Lion Feuchtwanger (Munchen, Beck Verlag, 1983), p.15. 2- Ibid, p.15

3- Ibid, p.15 4- Ibid, p.15 5- ibid, p.18 6- Ibid, p.18 7- Ibid, p.18

8- Aus Deutscher Vergangeheit, Max Hueber Verlag Muenchen, 1963, pp. 117-118.

9- Fruchtwangar, Lion, "Einleitung (Vasantasena)", Gesaaammetle Werke in Einzelausgaben (Berlin, Aufbau Verlag, 1984), Band 15, Dramen 1, p.45.

10- Dahlke, Hans, "Nachbemerkung (Vasantsena)", Gesaaamelte Weke in Einzelausgaben (Berlin, Aufbau Verlag, 1984) Band 15, Dramen 1, p.608. 11- Dahlke, Hans, Op.Cit., p.608 12- Dahlke, Hans, Op.Cit., pp.610-611

13- Ibid, pp. 610-611 14- Ibid, p.611 15- Feuchtwanger, Lion, Op.Cit., p.51 16- Dahlke, Hans, Op. Cit. p.611 17- Feuchtwanger, Lion, Op. Cit. pp.46-47 18- Ibid, p.47 19- Ibid, p.53 20- Ibid, p.45 21- Ibid, p.45 22-Ibid, p.46 23- Ibid, p.46 24-Ibid, p.47 25- Ibid, pp.47-48 26- Ibid, pp.49 27- Ibid, pp.49 28- Ibid, pp.50 29- Ibid, pp.50 30-Ibid, pp.52 31-Kale, M.R. Mrichchakatika, Bombay, Booksellers Publishing Co., 1964. 32-Kieth, A.B. Sanskrit Drama, N. Delhi, Motilal Banarasi Das 1965.